M. A. Semester – II
Philosophy CC-08
Unit – II

Prof. Ragini Kumari
Prof. & Head
P.G. Centre of Philosophy
Maharaja College, Ara

उपनिषद् का ब्रह्म विचार

(भाग – I)

उपनिषद् भारतीय दर्शन का ज्ञान भण्डार है यह वह सलिला है, जिससे भारतीय दर्शन बहकर अनेकों धार के रूप में निकली है और अपनी सुरभि यत्र-तत्र बिखेरते आगे बढ़ रही है। इसकी केन्द्रीय शिक्षा आत्मा और ब्रह्म में तादात्म्य स्थापित करने की प्रवृत्ति है अर्थात् "इसके अनुसार आत्मा और ब्रह्म एक है। इसका कहना है कि "अहम् ब्रह्मास्मि तत्त्वम् असि" अर्थात् मैं ब्रह्म हूँ और तुम ब्रह्म हो। हममें और ब्रह्म में कोई अन्तर नहीं है। उपनिषद् में ब्रह्म और आत्मा दोनों का वर्णन मिलता है और यह विश्लेषण इस बात की पुष्टि करता है कि किस प्रकार ये दोनों शब्द एक प्रकार की सत्ता को सूचित करते हैं।

छान्दोग्य उपनिषद् में प्रजापति और इन्द्र के बीच जो संवाद हुआ है उसमें आत्मा के विषय में एक गतिशील विचार मिलता है। यहाँ आत्मा को चार श्रेणियों में विभक्त किया गया है—

(1) शारीरिक आत्मा
(2) आनुभविक आत्मा
(3) सर्वातिशायी आत्मा
(4) परम आत्मा

प्रजापति संवाद के प्रारम्भ में ही आत्मा के कुछ सामान्य लक्षणों का वर्णन करते हैं जो कि "यथार्थ आत्मा के अन्तर्गत पायी जानी चाहिए। इनके अनुसार आत्मा वह है, जो पाप विमुक्त हो, वृद्धावस्था से रहित हो, जिसे भूख-प्यास मृत्यु-शोक से रहित हो, जिसे भूख-प्यास नहीं सता सकती। "आत्मा एक कर्ता है जो सब परिवर्तनों के अन्दर सामान्य रूप से विद्यमान रहता है, जाग्रत अवस्थाओं स्वप्न में, निद्रितावस्था में, मृत्यु में पुनर्जन्म में और अन्तिम मुक्ति में भी एक समान विद्यमान रहनेवाला एक आवश्यक अवयव है।"

(वृहदारण्यक उपनिषद ५:५,३)

मृत्यु इसे छू नहीं सकती, न उसे कोई विकार छिन्न-भिन्न कर सकता है। गीता में भी इसकी चर्चा की गयी है। आत्मा अपने आप में एक पूर्ण लोक है, कोई ऐसी बात नहीं है जो इसका प्रतिद्वन्दी बन सके। यह आत्मा सीमित नहीं है परन्तु यह समस्त सीमित वस्तुओं का आधार है। समस्त ब्रह्माण्ड इसी के अन्दर निवास करता है। याज्ञवल्क्य ने कहा है कि आत्मा सबसे भीतर रहकर सबका निरूपण करता है। आत्मा के स्वरूप की चर्चा करते हुए कहा जाता है कि "यह आत्मा ही विश्व है अतः निःसन्देह यह विश्व ब्रह्ममय है।"

(वृहदारण्यक उपनिषद ३७/२५)

फिर हम पाते हैं कि माण्डक्योपनिषद में वर्णित "ॐ" आत्मा के सभी अवस्थाओं का निरूपण करता है। आत्मा की तीन अवस्थाएँ हैं और ये तीनों मिलकर एक चौथी अवस्था को जन्म देते हैं—

(1) जाग्रत
(2) स्वप्न
(3) सुषुप्ति और
(4) तुरीय अवस्था।

इन्हीं चार अवस्थाओं के कारण यह उपनिषद् आत्मा को चतुष्पद के नाम से निर्दिष्ट करता है।

आत्मा की सबसे पहली अवस्था जाग्रत अवस्था है। जागत अवस्था में आत्मा - संसार का अनुभव करती है, देखती है तथा विचरण करती है। अतः इसे वैश्वानर आत्मा कहते हैं। 'वैश्वानर' का अर्थ है जो विश्व भी हो और नर भी हो, इसे 'वैश्वानर' कहते हैं।

इसकी दूसरी अवस्था स्वप्न की है, जिसमें आत्मा अपने अन्तःकरण में ही विचरण करती है, अतः इसे 'तैजस' कहते हैं।

आत्मा की तीसरी अवस्था सुषुप्ति की है, इसमें आत्मा प्रगाढ़ निद्रा में रहती है। उसे स्वप्न दृष्टिगोचर नहीं होता अतः इसे 'प्राज्ञ' कहते हैं। इसमें आत्मा स्वप्न तथा इच्छा से परे आनन्दमय हो जाती है और उन तीनों को अपने में समाहित कर चौथी अवस्था में पहुँच जाती है जो 'तुरीय अवस्था' है। तुरीय आत्मा एक विशुद्ध आन्तरिक चैतन्य की अवस्था है। यह अवस्था ऐसी है जो न बाहर की ओर है न भीतर की ओर, जो न ज्ञान स्वरूप है और न जाननेवाला है, जो न देखने में आ सकता है और न व्यवहार में लाया जा सकता है। यह अनुमानातीत है। आत्मा चेतना का मूल तत्व है।

यह संसार का पूर्णरूप सदा शान्तिमय एवं सर्व आनन्दमय एकमात्र इकाई है।

ऋग्वेद के सूक्त के समर्थन में उपनिषद भी कहता है कि परम तत्व एक ब्रह्म है, ब्रह्म से ही जगत उत्पन्न होता है और उसी में पुनः विलीन हो जाता है। 'ब्रह्म' शब्द का अर्थ होता है बहुत बड़ा जिससे वृहत्त की कल्पना नहीं की जा सकती। इसी सत्ता को पाश्चात्य दर्शन में 'निरपेक्ष सत्ता' कहा जाता है। यह ब्रह्म बौद्धिक चेतना का चरम आदर्श है। समस्त दार्शनिकों का चरम लक्ष्य इस ब्रह्म का ज्ञान प्राप्त करना है बिना इनके ज्ञान के बुद्धि तृप्त नहीं होगी। ब्रह्म की चर्चा करते हुए उपनिषद में कहा गया है कि ब्रह्म- आनन्दमय है। तैत्तिरेय उपनिषद में इस सम्बन्ध में एक सुन्दर वर्णन प्रस्तुत किया गया है। भृगु अपने पिता के पास जाकर उस परम तत्व के स्वरूप के बारे में जानकारी प्राप्त करने की इच्छा व्यक्त करता है। पिता इस ओर संकेत करते हुए कहते हैं कि

"यतोवा इमानि भूतानि जायन्ते।
येन जातानि जीवन्ति।"

— To be continued —